अध्याय : 2

मणि मधुकर के नाटकों में असंगत-नाट्य-शैली प्रयोग

अध्याय : 2

मणि मधुकर के नाटकों में असंगत-नाट्य -शैली प्रयोग

भूमिका

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में, जहाँ एक ओर परम्परागत नाटक लिखे गये हैं, वहाँ दूसरी ओर कई नये प्रयोग भी किये गये हैं। काव्य-नाटक, नुक्कड नाटक, बाल रंगमंच, लोक-नाट्य, कविता, कहानी और उपन्यास के नाट्य रूपान्तर तथा असंगत नाट्य प्रयोग आदि इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि विश्व का प्रथम असंगत नाटक भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र द्वारा लिखित "तांबे के कीड़े" है, तथापि सही अर्थों में पाश्चात्य नाटककार सैम्युएल बेकेट के साथ ही असंगत नाट्य परंपरा का आरंभ होता है। हिन्दी की असंगत नाट्य विधा पाश्चात्य साहित्य के ऐब्सर्ड नाट्य शिल्प से विशेष प्रभावित है। पाश्चात्य जगत में विश्वयुद्धों के परिणामस्वरूप भय, आतंक, अनास्था, अविश्वास और गिरते मानवीय संबंधों ने व्यक्ति जीवन को असहज और अपाहिज बना दिया और साहित्य के विभिन्न अंगों में विशेषकर नाटक में इसकी अभिव्यक्ति भी होने लगी। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में भी समसामयिक परिस्थितियों और पाश्चात्य ऐब्सर्ड नाट्य-परंपरा के प्रभाव स्वरूप मानव जीवन की विभिन्न असंगतियों को वाणी देने के लिए हिन्दी के नाटककारों ने भी अपने नाटकों में असंगत नाट्य-शिल्प का प्रयोग किया।

पश्चिम की तरह यहाँ का व्यक्ति भी अस्तित्व रक्षा, अकेलेपन, आतंक, अविश्वास, अनास्था, जीवन की क्षणभंगुरता और संबंधहीनता के कारण अन्दर से टूटा हुआ है। भ्रष्ट शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, आधुनिक शिक्षा प्रणाली, धार्मिक और सामाजिक स्थिति तथा औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप निर्माण हुई संवेदनाहीन मशीनी जिन्दगी के साथ गरीबी और बेरोजगारी ने यहाँ के व्यक्ति को विशेष रूप से तोडा है। परिणामस्वरूप

उसके आंतरिक और बाह्य यथार्थ में टकराहट होने लगी है और उससे विभिन्न असंगतियाँ जन्म ले रही है। ऊपर से व्यवस्थित, क्रमबद्ध और संतुलित दिखाई देने वाले व्यक्ति के जीवन में भी कहीं न कहीं असंगति होती है। मणि मधुकर और हिन्दी के अन्य असंगत नाटककारों ने जीवन की इन्हीं असंगतियों को चित्रित करते हुए जीवन के उन पक्षों को अपने नाटकों में स्थान दिया, जो पूर्ववर्ती नाटककारों से अछूते रहे थे। इसीलिए हिन्दी की असंगत नाट्य-विधा को हम स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य की नवीनतम उपलब्धि कह सकते हैं।

1· "असंगत" और "विसंगत" शब्द प्रयोग

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रयुक्त "असंगत" और "विसंगत" शब्द अंग्रेजी ऐब्सर्ड(Absurd) शब्द का हिन्दी रूपांतर है। मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश में (Absurd) शब्द के अर्थ इस प्रकार दिये गये हैं - (1) अनर्थक, अयुक्त, असंगत, न्याय विरुद्ध, ऊटपटाँग, (2) तर्कहीन, (3) मूर्खतापूर्ण, हास्यास्पद, वाहियात, लचर, (4) अर्थहीन बेतुका।[1] अमेरिकना विश्वकोश प्रथम खण्ड के अनुसार "मूलतः तर्क के नियमों के भंग को व्यक्त करने के लिए ऐब्सर्ड (Absurd) संज्ञा का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक अध्यात्म, दर्शन और विभिन्न कला क्षेत्र में अशक्यप्राय बातों को प्राप्त करने की वह एक ऐसी लालसा है, जिसमें मनुष्य की आध्यात्मिक तथा भावनिक जरूरतों की परिपूर्ति के लिए परम्परागत मूल्यों का विघटन व्यक्त होता है।"[2]

मानक हिन्दी कोश (प्रथम खण्ड) के अनुसार असंगत शब्द के अर्थ है- (1) जो किसी से मिला, लगा या सटा न हो। (2) जिसकी किसी से संगति या मेल न बैठता हो। (3) जो प्रस्तुत विषय के विचार से उचित, उपयुक्त अथवा समीचीन न हो।[3] इसी कोश के पाँचवे खण्ड के अनुसार "विसंगत" शब्द का अर्थ है - "जो संगत न हो। जिसके साथ संगति न बैठती हो। बे-मेल।"[4]

डॉ·गोविन्द चातक के अनुसार "विसंगत" अथवा "ऐब्सर्ड" का सामान्य अर्थ होता है - विषम स्वर होना, सामंजस्यहीन, अतार्किक, असम्बद्ध, ऊलजलूल, हास्यास्पद आदि।[5]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी के "असंगत" और "विसंगत" शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची और अंग्रेजी शब्द Absurd के हिन्दी रूपांतर है। हिन्दी के नाटक साहित्य में यद्यपि "असंगत" और "विसंगत" शब्द एक-दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तथापि "असंगत" शब्द "विसंगत" की तुलना में विशेष रूढ भी है और सही भी। अतः हमने भी अपने विवेचन-विश्लेषण में "असंगत नाटक" संज्ञा का ही प्रयोग किया है।

2· असंगत नाटक : परिभाषा और स्वरूप

असंगत नाटकों को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य की अधुनातन प्रवृत्ति माना जाता है। "असंगत" या "विसंगत" शब्द इन नाटकों की प्रवृत्तिगत विशेषता के सूचक हैं। मनुष्य जीवन की विभिन्न असंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत करना इन नाटकों का उद्देश्य होता है। व्यक्ति चाहे वह पुरूष हो या स्त्री, बालक हो या वृद्ध, अमीर हो या गरीब - अपने जीवन - व्यवहार में असामान्य (Abnormal) होता है और उसके आचरण में कहीं न कहीं असंगति पाई जाती है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाट्य आलोचक डॉ·नर-नारायण राय ने असंगत नाटकों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "व्यावहारिक जीवन में हर व्यक्ति को अपने चरित्र से भिन्न भूमिकाएँ निभानी होती हैं - यही है जीवन की आंतरिक "विसंगति" या "असंगति"। जिस नाट्य रचना में यह असंगति जितनी अधिक उजागर होती है अपने आप में वह ड्रामा उतना ही "ऐब्सर्ड" हो जाता है।"[6]

असंगत नाटकों की नवीनता और नकारात्मक दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए श्री बेजनाथ राय लिखते हैं - "असंगत नाटककार मानते हैं जहाँ आशा है वहाँ निराशा भी, जहाँ ज्ञान है वहाँ अज्ञान भी, जहाँ सार्थकता है वहाँ निरर्थकता भी। इस प्रकार सारे मानवीय संबंध यदि सारगर्भित और मूल्यवान हैं तो निस्सार और निरर्थक भी। असंगत नाट्य दर्शन इसी नकारात्मक पक्ष को लेकर काव्य-बिंबों के माध्यम से अभिव्यक्ति करता है। यही कारण है कि असंगत नाट्य परम्परा से कटा, नया, अकेला और सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है।"[7]

असंगत नाटकों के कथानक, चरित्र और उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰जयदेव तनेजा ने लिखा है - "इन नाटकों का कथानक तर्क-तारतम्य युक्त नहीं होता। संरचना सीधी रेखा में न होकर वृत्ताकार होती है। चरित्रों में भी विकास या बदलाव की कोई संभावना नहीं होती। उपदेशपरक उद्देश्य के बजाय नाटककार जीवन के खोखलेपन, ऊब, अलगाव और अर्थहीनता का विसंगत दृश्यांकन भर करता है।"[8] डॉ॰चन्द्र के अनुसार असंगत नाटकों के कथ्य में भी कोई क्रमबद्धता नहीं होती। असंगत नाटककार कथ्य को प्रारम्भ, मध्य और अंत की स्थिति में विकसित करना गलत मानते हैं। यही कारण है कि उनके नाटकों का कथ्य जहाँ से प्रारम्भ होता है, वहीं समाप्त हो जाता है।[9]

उपर्युक्त मतों के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि असंगत नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य की एक अद्यतन प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति किसी सुनिश्चित और सुनिर्धारित सिद्धान्त या आंदोलन के कारण निर्माण नहीं हुई है, बल्कि जीवन की सारहीनता, ऊब, संत्रास, निराशा, भय, आतंक और असंगतियों को वाणी देने के लिए काल की आवश्यकता के रूप में यह प्रवृत्ति एक आंदोलन बनकर नाट्य साहित्य में उपस्थित हुई है। असंगत नाटकों में या तो कथावस्तु होती ही नहीं और होती भी है तो अत्यंत क्षीण। घटनाओं में भी संगति कम होती है और बिखराव अधिक। क्योंकि क्रिया व्यापार में भी कोई कार्य-कारण संबंध नहीं होता, उसमें यांत्रिकता, तर्कहीनता और असम्बद्धता होती है। इन नाटकों के संवाद भी निरर्थक, बेतुके, असम्बद्ध, अनर्गल, ऊलजलूल और उलझे हुए होते हैं। इनकी भाषा भी प्रतीकात्मक, सांकेतिक और रोजमर्रा के बोलचाल की दैनंदिन भाषा होती है, जिसमें शब्द कम और हरकत अधिक होती है। इनका मंच भी प्रतीकात्मक, ऊलजलूल और अल्पव्यय वाला होता है। इन नाटकों के शीर्षक भी प्रतीकात्मक और सांकेतिक होते हैं। तात्पर्य यह कि असंगत नाटक परम्परागत नाटकों से भिन्न एक सर्वथा नयी दृष्टि को लेकर उपस्थित हुए हैं।

3॰ हिन्दी के असंगत नाटककार और उनके नाटक

भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र हिन्दी तो क्या, विश्व-साहित्य में असंगत नाटक लिखने वाले सर्वप्रथम प्रयोगशील नाटककार हैं, जिन्होंने कथ्य, शिल्प तथा रंगमंच की दृष्टि से हिन्दी

नाटक साहित्य में युगांतर उपस्थित किया। भुवनेश्वर के "कारवां" तथा अन्य एकांकी में संकलित "ऊसर" तथा "तांबे के कीड़े" असंगत नाट्य-शिल्प के सशक्त उदाहरण हैं। भुवनेश्वर के बाद पंद्रह वर्षों तक हिन्दी की असंगत नाट्य परंपरा खंडित रही, जिसे पुनः प्रतिष्ठित करने का कार्य डॉ॰विपिनकुमार अग्रवाल ने किया। स्वातंत्र्योत्तर भारत में निर्माण हुई परिस्थितियों और उससे उत्पन्न विसंगतियों को उन्होंने अपने "तीन अपाहिज" नामक ग्यारह लघु नाटकों के संग्रह में असंगत नाट्य शिल्प के माध्यम से कुशलता से अंकित किया है। उनका "लोटन" नामक नाटक भी औद्योगीकरण के फलस्वरूप मनुष्य जीवन में निर्माण हुई विभिन्न विसंगतियों को रेखांकित करता है।

डॉ॰विपिनकुमार अग्रवाल के नाटकों से आरम्भ हुई यह धारा आज तक अखंड रूप से प्रवाहित है। इस धारा के महत्त्वपूर्ण नाटक हैं - डॉ॰लक्ष्मीकान्त वर्मा के "अपना अपना जूता", "आदमी का जहर" तथा "रोशनी एक नदी है", डॉ॰शम्भूनाथ सिंह के "दीवार की वापसी" और "अकेला शहर", काशीनाथ सिंह का "घोआस", डॉ॰सत्यव्रत सिन्हा का "अमृतपुत्र", डॉ॰लक्ष्मीनारायण लाल के "काफी हाऊस में इंतजार", "सूर्यमुख", "अब्दुला दीवाना", तथा "सबरंग मोहभंग", मुद्राराक्षस के "मरजीवा", "योर्स फेथफुली", "तिलचट्टा", "तेन्दुआ", "गुफाएँ" और "सन्तोला", राजकमल चौधरी का "भग्नस्तूप एक अक्षत स्तंभ", बृजमोहन शाह के "त्रिशंकु" और "राह ये मात", रमेश बक्षी के "देवयानी का कहना है", "तीसरा हाथी" और "वामाचार", रामेश्वर प्रेम के "कैम्प", "अजातघर", "चारपाई" और "अंतरंग", सुदर्शन मजीठिया का "चौराहा", हमीदुल्ला के "उलझी आकृतियाँ" और "दरिंदे", शांति मेहरोत्रा के "एक और दिन" और "ठहरा हुआ पानी", सुदर्शन चोपडा का "अपनी पहचान", रमाशांकर निलेश का "चीलघर", चन्द्रशेखर का "कटा नाखून", डॉ॰चन्द्र के "कुत्ते" और "आकाश झुक गया", अभिमन्यु अनत "शवनम" का "विरोध", प्रियदर्शी प्रकाश का "सभ्य सांप", बलराज पंडित का "पाँचवा सवार", राजेश जैन का "चिन्दी मास्टर", तथा मणि मधुकर के "रसगंधर्व", "खेला पोलमपुर", "बुलबुल सराय","इकतारे की आँख" तथा "बोलो बोधिवृक्ष" आदि।

4· मणि मधुकर के असंगत नाटक

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार मणि मधुकर ने साहित्य के लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी का कमाल दिखाया है, परंतु उनकी प्रसिद्धी मूलतः उनके नाटकों के कारण है। उनके अनुसार नाटक एक सामूहिक कला है। पहले नाटककार नाटक लिखता है, फिर निर्देशक उसे रंगमंचीय मुहावरे में ढालता है और तद्नंतर अभिनेताओं द्वारा वह दर्शक के सामने प्रस्तुत किया जाता है। मणि मधुकर के शब्दों में - "मैं मानता हूँ कि नाटक का मूल आलेख ही नाटककार का होता है, बाकी नाटक सब मिलकर रचते हैं। इसलिए खेलने के बाद यह नाटक निर्देशक और रंगकर्मियों का हो जाता है। नाटक अकेले नाटककार की सम्पत्ति नहीं है।"[10]

उनकी यह भी धारणा है कि आज के हिन्दी नाटक रंगमंचीय होने के बावजूद दर्शकों से जुड़ नहीं पाते। क्योंकि उनमें आम आदमी के जीवन का चित्रण नहीं होता। इसीकारण मोहन राकेश के "आषाढ का एक दिन", "लहरों के राजहंस" और "आधे अधूरे" नाटक उन्हें किसी उपन्यास के नाट्यान्तर जैसे दिखाई देते हैं।[11] हिन्दी नाटकों की इस कमी को पाटने के लिए ही उन्होंने अपने नाटकों में असंगत-नाट्य-शिल्प और लोकनाट्य-शिल्प का आश्रय लेकर जन-जीवन से जुड़ने की कोशिश की है। उनके सभी नाटक आधुनिक विसंगत परिवेश और आम आदमी की विडम्बन स्थिति को व्यंग्यात्मकता से प्रस्तुत करते हैं। "रसगंधर्व", "बुलबुल सराय", "इकतारे की आँख" और "बोलो बोधिवृक्ष" इन सभी नाटकों में विसंगत परिवेश में घिरे सामान्य आदमी की जिन्दगी को सशक्तता से उभारा गया है।

5· विसंगत जीवन बोध के विविध रूप

आज हम देखते हैं कि जीवन के सभी क्षेत्रों में असंगतियाँ ही असंगतियाँ हैं। मनुष्य कहता कुछ और है और करता कुछ और। उसके दिखाने के और खाने के दाँत अलग अलग है। इस दोहरे रूप के कारण अनेक विसंगतियाँ जन्म ले रही है। इससे उसका सारा जीवन विसंगतियों को झेलने और क्रमशः खंडित होने में ही व्यतीत होता है। इसी कारण जन-जीवन से जुड़े आम आदमी के नाटककार मणि मधुकर ने अपने नाटकों

में देश की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, आर्थिक, धार्मिक और नैतिक जीवन की विसंगतियों को विभिन्न रूपों में अंकित किया है।

क· रक्षक ही भक्षक है :-

आज हम देख रहे हैं कि जिनके हाथ में सत्ता है, वे शासन करने के बदले जनता का शोषण करने में ही व्यस्त है। वास्तव में राजा, नेता या शासकीय अधिकारियों को चाहिए कि पहले वे जनता के दुःख-दर्द को दूर करें, देश-हित का ध्यान रखते हुए नयी नयी योजनाएँ कार्यान्वित कर जनता की मदद करें, अन्याय-पीडित लोगों को न्याय दें और हर तरह से जनता के काम आये। लेकिन ये लोग स्वार्थ-सिद्धि में डूबकर अपने फर्ज को भी भूल गए हैं। स्वार्थ और सत्ता के मोह ने इन्हें भ्रष्टाचारी, दुराचारी, अवसरवादी और सुविधाभोगी बना दिया है। अपने रक्षक रूप को भूलकर ये भक्षक बन गये हैं।

मणि मधुकर का "रसगंधर्व" एक असंगत नाटक है, जिसमें न तो कोई क्रमबद्ध कथा है और न ही पात्रों का चरित्र-चित्रण। इसमें व्यक्ति जीवन का चित्रण नहीं, व्यक्ति के खण्ड जीवन का चित्रण है। इसी कारण एक ही पल एक साथ कई भूमिकाओं में उपस्थित होता है। इस नाटक का "अ" जो जादूगर है और राजा भोज की धारानगरी में कैदी का जीवन यापन कर रहा है, नारी कंठ बनाकर कहता है -

"तुम···मुझे खून दो, मैं····तुम्हे····दो मुट्ठी···चून दूँगी।"

देश···को···तुम्हारी···जरूरत है, इसलिए···अपनी···जरूरतें···· कम ···करो।"[12]

"अ" का यह कथन वर्तमान सुविधाभोगी नेताओं पर करारा व्यंग्य है, जो स्वयं सुविधाभोगी बनकर जनता को अपनी जरूरतें कम करने को कहते हैं। वास्तव में दो जून की रोटी ही सामान्य जनता की असली जरूरत है। लेकिन देश की जरूरतों का आश्रय लेकर ये नेता उनकी यह जरूरत भी छीनना चाहते हैं। क, ब, स और द का पुतली-प्राप्ति के लिए संघर्ष[13] भी इसीप्रकार का है, जिसमें वे सत्ता प्राप्ति के मोह में अपना रक्षक रूप छोड़कर भक्षक बन जाते हैं।

बुलबुल सराय नाटक के प्रचण्डसेन और मायासुर भी रक्षक के रूप में भक्षक बनकर जनता को गुमराह कर रहे हैं। जनता में वह जान-बूझकर प्रलय की अफवाह फैलाता है, ताकि लोग सेना में भर्ती हो और वह आसानी से दिग्विजय कर सके। लोगों के जीने-मरने की उसे जरा भी परवाह नहीं है। जीत की नशा में वह यह भी भूल जाता है कि युद्ध में कितने लोग मरे और कितने जीवित रहें।[14]

बुलबुल सराय पर जब से मायासुर की छाया पड़ी है, वहाँ के लोगों का जीना दूभर हो गया है। आते ही उसने "ई" के पैरों में पायल और "आ" के पैरों में बेडियाँ डाल दी है। मायासुर पक्का फासिस्ट है, पर जनता चैन से जिन्दा रहे, इसलिए उसको "जिन्दाबाद" कहती है। मायासुर की डुगडुगी जनता को हमेशा झुके और दबे रहने की चेतावनी देती है।[15]

मणि मधुकर के इकतारे की आँख नाटक में काशी का नगर कोतवाल भी रक्षक के रूप में भक्षक बनकर जनता पर अत्याचार कर रहा है। औरतों की इज्जत से खेलना उसका शौक है।[16] सामान्य जनता से वह अत्यंत क्रूरता से पेश आता है। फीलखाने के हाथियों की तरह पंडितों, मुल्लाओं, महंतो और जोगियों के खान-पान तथा भोग-आराम का जिम्मा भी उसने नगर के अलग-अलग मुहल्लों पर डाल रखा है।[17] इतना ही नहीं, कबीर जैसा नेक इन्सान जब "मानुष मानुष एक समान" की घोषणा करता है[18] तब नगर कोतवाल उसे धर्मद्रोही और बदजबान करार देते हुए उसे गंगा में डुबो देने का हुक्म देता है। इससे भी जब कबीर बचता है, तो वह उसे सरे आम सूली पर लटकाना चाहता है। कोतवाल का यह रूप भक्षक नहीं तो और क्या है ? प्रस्तुत नाटक के ठाकुर विनायकप्रसाद नारायणसिंह भी ऐसे ही नेता हैं, जिनके बारे में निर्देशक कहता है - "वह महाप्रतापी है, घट-घट में व्यापी है - उन्हें जो नहीं जानेगा, बेमौत मरेगा।"[19]

मणि मधुकर का हाल ही में प्रकाशित नया नाटक "बोलो बोधिवृक्ष" भी असंगत नाटक है, जिसमें आधुनिक राजनीतिक जीवन की समस्याओं का पर्दाफाश किया गया है। प्रस्तुत नाटक में सत्ताधारी पार्टी के नेता के रूप में चित्रित बोधिवृक्ष उर्फ

12447
A

गुलजारसिंह कनातवाला और विरोधी दल के नेता के रूप में चित्रित चोंचों और गोंगों ऐसे राजनीतिक नेता हैं, जो सत्ता-प्राप्ति की होड में उस जनता को भी भूल गये हैं, जिस जनता ने उन्हें अपने प्रतिनिधि के रूप में चुना है।

ख· **मनुष्य पशु बन रहा है**

अपने आपको सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने वाला आज का मनुष्य सभ्यता और संस्कृति के विकास के बावजूद पशुता की ओर झुक रहा है। उसके पाशविक संस्कारों ने उसे पशु बना दिया है। "पशु जंगली होते हैं और आदमी के भीतर भी वही आदिम वन्य संस्कार मौजूद हैं जिसे पशुत्व कहते हैं।"[20] जिस प्रकार जंगल में बाघ, सिंह जैसे क्रूर और खूँखार पशु होते हैं, उसी प्रकार हीरन, खरगोश जैसे कुछ ऐसे पशु भी होते हैं, जो खूँखार नहीं होते। जंगल की तरह समाज में भी शोषक और शोषित या उच्च और निम्न दो प्रकार के लोग होते हैं। समाज के उच्च वर्ग के लोगों में पाशविकता की प्रवृत्ति विशेष मात्रा में दिखाई देती है। उच्च वर्ग के सुविधाभोगी लोग निम्न वर्ग के लोगों के साथ बहुत ही क्रूरता से पेश आते हैं। इससे निम्न वर्ग के लोग अपने आपको जानवर से भी बदतर महसूस करते हैं।

मणि मधुकर के **रसगंधर्व** नाटक के अ, ब, स और द समाज के निम्न वर्ग से संबंधित हैं। वे अपने आपको मनुष्य नहीं, जानवर समझते हैं। वे इतने डरे हुए हैं कि उन्हें अपने मनुष्य होने पर भी शंका आती है। निम्नलिखित संवाद दृष्टव्य हैं -

अ : हम सन्तरी जी से इतना डरते क्यों है ? वह भी तो एक मनुष्य है।

द : वह एक मनुष्य है ?

अ : और हम भी मनुष्य है।

ब : (शंकापूर्ण) हम भी, मनुष्य हैं।[21]

मणि मधुकर के **बुलबुल सराय** नाटक में सम्राट प्रचण्डसेन एक ऐसा पात्र है, जो मनुष्यता को तिलांजली देकर पशु बन बैठा है। सत्ता-पिपासा ने उसे इतना अंधा कर डाला है कि गद्दी हथियाने के लिए वह अपने पिता अखण्डसेन की हत्या

करता है। इतना ही नहीं, अपनी माँ और बहन को भी राज्य से बहिष्कृत करता है। निम्नलिखित संवाद दृष्टव्य है-

"अ : राजनीति रिश्तों को खा जाती है।

क : अगर हमने कुछ करने की ठानी तो प्रचण्डसेन हमें खा जायेगा।

ख : कच्चा चबा जायेगा। बड़ा खूँखार है।

आ : प्रचण्डसेन तो हमें भी प्राणदंड देने पर तुला हुआ था।

ई : सत्ता की भूख ने न माँ को बख्शा, न बहन को।

आ : मंत्री ने किसी तरह हमें बचा लिया।"[22]

मणि मधुकर के **इकतारे की आँख** नाटक में कई स्थलों पर पाशविकता के दर्शन होते हैं। जोगियों का एक समूह निम्न वर्ग के रैदास को पीटकर उसकी पत्नी जानकी को भगा ले जाता है। इतना ही नहीं उसका उपभोग लेकर उसकी हत्या भी करता है। जोगियों का यह कृत्य पाशविकता को भी लजा देने वाला है। इसी तरह काशी के वनियों द्वारा जुलाहों की बस्ती जला देने की घटना भी उनके पशुत्व को उभारती है। रैदास इसका आँखों देखा हाल कबीर को सुनाते हुए कहता है -"....उन्होंने जुलाहों की बस्ती को लपटों के हवाले कर दिया। मैं शोर सुनकर जागा और फिर लपटें देखकर इधर दौडा आया। कितने ही आदमी-औरत-बच्चे जल मरे। उन्हें बचाने वाला वहाँ कौन था ? सभी तो जल रहे थे।"[23]

नाटक के अन्त में लोई काशी के एक वैद्य के पास जाकर उनसे बिनति करती है कि वे एक बार मगहर चलकर कबीर को देख ले और उनकी दवा-दारू शुरू कर दें। परंतु वैद्य उसके साथ बर्बरता और पाशविकता से पेश आता है। जब यह बात कबीर के पुत्र कमाल को मालूम होती है, तो वह उसे सूअर से निपटने की बात करता है। इस पर सभी काशी-निवासियों को पशु करार देती हुई लोई उसे समझाती है - "रैदास तो इस पूरे शहर को ही सूअरों का बाड़ा कहता है। तुम किस किस सूअर से निपटोगे ?"[24]

मणि मधुकर के नये नाटक "बोलो बोधिवृक्ष" में लाले झूठमूठ का टैरेरिस्ट बन गया था। अपना अनुभव छीछी को बताते हुए वह कहता है - "मुझे याद नहीं, मैंने कौन से डायलॉग बोले और क्यों बोले और कैसे बोले - लेकिन मैंने बोले, जम कर बोले, मैं बहुत खूँखार हो गया, मेरे अन्दर का पशु - वह गैंडा - मुझ पर हावी हो गया।"[25] आज के मनुष्य पर पशुता इतनी हावी हो गयी है कि अपने आप को पशु कहने में भी वह सकुचाता नहीं। छीछी और लाले के निम्नलिखित संवाद से यह बात स्पष्ट हो जाती है -

"छीछी : हम एनीमल फॉर्म में रहने के आदी हो गये हैं।
लाले : यू आर माइ पूसी कैट।
छीछी : यू आर माइ अलशेसियन डॉग।"[26]

यद्यपि आज का मनुष्य अपने आप को पशु कहकर पशुतुल्य आचरण कर रहा है, तथापि मणि मधुकर की यह विशेषता है कि वे अपने नाटकों में मनुष्य के टूटते मूल्यों की ओर इशारा भी करते हैं, और उससे उबारने का एहसास भी दिलाते हैं। उनके नाटकों की इस विशेषता को परिलक्षित करते हुए डॉ॰सुन्दरलाल कथूरिया कहते हैं - "जीवन से थके, टूटे-हारे और निराश व्यक्तियों की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के बावजूद मणि भविष्य के प्रति पूरी तरह समाश्वस्त है, अतः उनके नाटक मुद्राराक्षस की तरह अवसादान्त न होकर सुखान्त या प्रसादान्त है।"[27] रसगंधर्व नाटक के "अ" के मुँह से मानो नाटककार स्वयं कहता है कि "···हम पशु होते जा रहे हैं। लेकिन ···मैं चाहता हूँ कि किसी तरह इस जहर से छुटकारा मिले, पशुता का अहसास खत्म हो, मानवता का विस्तार हो····।"[28]

ग॰ नैतिकता के नये प्रतिमान

व्यक्ति जीवन को दिशा देने के लिए समाज कुछ बातें स्वीकृत करता है, इन्हें ही जीवन-मूल्य वह आदर्श जीवन-पद्धति है। डॉ॰शेखर शर्मा के अनुसार- "जीवन-मूल्य वह आदर्श जीवन-पद्धति है, जिसका पालन करना किसी भी समाज के लिए आवश्यक समझा जाता है।"[29] लेकिन समाज द्वारा स्वीकृत ये जीवन-मूल्य हमेशा

परिवर्तित होते रहते हैं। एक काल और एक देश के लिए स्वीकृत जीवन-मूल्य दूसरे काल और देश के लिए उपयुक्त होंगे ही ऐसा नहीं। क्योंकि जीवन-मूल्य देश, काल और परिस्थिति के सापेक्ष हुआ करते हैं। यही कारण है कि हर काल और देश के अपने जीवन-मूल्य होते हैं।

आधुनिक जीवन में हम देख रहे हैं कि पुरानी मान्यताएँ टूट रही है और उनकी जगह नयी मान्यताएँ स्थान ले रही है। इससे समाज में नैतिकता के नये मूल्य निर्माण हो रहे हैं। पुराने जमाने में जो बातें अनैतिक थी, आज के जमाने में वे बाते नैतिक बन बैठी हैं। पुराने जमाने की प्रेम और यौन संबंधी मान्यताएँ आज बदल गयी हैं। पारिवारिक संबंधों में भी विघटन दिखाई देता है। आज मनुष्य मनुष्य के बीच आत्मीयता और भावनात्मकता की जगह संबंधहीनता और अजनबीपन की भावनाएँ दृष्टिगोचर होने लगी है। रिश्ते-नाते केवल नाम के लिए ही रह गये हैं। मनुष्य स्वार्थी होता जा रहा है। वह मात्र अपने लिए ही जी रहा है। स्वार्थ और लालच ने उसे अंधा बना डाला है। चहार-दीवारी के अंदर बंद रहने वाली और पतिव्रता को अपना धर्म मानने वाली नारी भी आज उन्मुक्त विचरण कर रही है। बेकारी, बेरोजगारी, गरीबी, मँहगाई और भ्रष्टाचार ने आज के मनुष्य को पूरी तरह से तोड़ डाला है। परिणामस्वरूप आज का युग नैतिक दृष्टि से अधःपतन का युग बन गया है। निम्नलिखित मुद्दों के आधार पर हम इसे स्पष्ट कर सकते हैं -

अ· <u>विवाह मूल्यों में विघटन</u> :- आधुनिक समाज में स्त्री-पुरूष के भावनात्मक संबंधों में असंगतियों ने घर कर लिया है। परिणामस्वरूप विवाह मूल्यों में तेजी से विघटन होने लगा है। आज का पुरूष जिम्मेदारियों से कतराता है। कुछ हद तक नारी में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। सेक्स को एक प्राकृतिक भूख मानने के कारण आज के स्त्री-पुरूष प्रेम किसी और से और शादी किसी और से हो, तो उसे बुरा नहीं मानते। मणि मधुकर के **रसगंधर्व** नाटक में मनुष्य की इस प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया गया है। निम्नलिखित संवाद दृष्टव्य हैं -

"युवती : तुम्हारे माँ-भैन नहीं है क्या जी ?

ब : माँ-भैन तो है, जी, पर हम एक बीबी चाहते हैं।

स : हट्ट, गबदू, इस जमाने में बीवी चाहता है। प्रेमिका बोल प्रेमिका।"[30]

उपर्युक्त संवाद से स्पष्ट है कि आधुनिक काल में मनुष्य शादी करके जिम्मेदारियाँ उठाने की अपेक्षा प्रेमिका द्वारा शारीरिक संबंधों की पूर्ति कर जिम्मेदारियों से भागने में ही सुख अनुभव करता है।

बुलबुल सराय नाटक के "क" और "ख" शादी तो करते हैं, परंतु एक ही स्त्री से और बाद में उसे भी मोहमाया कहकर छोड़ देते हैं।[31]

इकतारे की आँख नाटक में कबीर की पत्नी धनिया उसे केवल इसलिए छोडकर चली जाती है कि उसे अच्छा घर और अच्छा रहन-सहन चाहिए था, जो उसे कबीर जैसे एक मामूली जुलाहे के घर नहीं मिल सकता था।[32] बोलो बोधिवृक्ष नाटक की नीनी काके से और छीछी लाले से प्रेम करती है। लेकिन दोनों भी अपने प्रेमियों के साथ एकनिष्ठ नहीं हैं। नीनी ने अपने बंगाली बॉस से और छीछी ने अपने मदरासी बॉस से अवैध संबंध बना रखे हैं।[33]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक काल में वैवाहिक मूल्यों में विघटन आया है। न पति अपनी पत्नी से एकनिष्ठ है और न ही पत्नी अपने पति से। पुराने जमाने में विवाह को एक संस्कार माना जाता था, लेकिन आज वह मात्र शरीर-सुख का माध्यम रह गया है।

आ· <u>पारिवारिक संबंधों में विघटन</u> :- आधुनिक जीवन की विसंगत परिस्थितियों के कारण आज पारिवारिक संबंधों में भी विघटन दिखाई देता है। परिवार के सदस्यों के बीच जो आत्मीयता और भावनात्मकता होनी चाहिए, उसकी जगह आज अजनबीपन और संबंधहीनता की भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। परिवार के सदस्य एक-दूसरे के लिए नहीं, केवल अपने लिए जी रहे हैं। आज रिश्ते-नाते केवल नाम के लिए ही रह गये हैं। स्त्री-पुरुष प्रेम में भी अब गोपनीयता की जगह उन्मुक्तता ने ले ली है। आज के स्त्री-पुरुष अपने अवैध प्रेम को भी खुले आम स्वीकार करने लगे हैं।

मणि मधुकर के **रसगंधर्व** नाटक में बढ़ई के रूप में चित्रित पात्र "द" ने पुतली का निर्माण किया है और इस अर्थ में वह निर्माता याने उसका पिता ठहरता है। फिर भी उसकी इच्छा है कि पुतली उसी को मिले। पिता होते हुए भी अपनी पुत्री के साथ विवाह करने की उसकी यह इच्छा पारिवारिक संबंधों के विघटन को सूचित करती है।[34]

बुलबुल सराय नाटक में "क" बड़ा भाई है और "ख" उसका छोटा भाई। दोनों एक ही स्त्री से विवाह करते हैं, परन्तु जब उसके कारण दोनों में झगडा होने लगता है तो दोनों भी उसे छोड़कर सन्यासी बन जाते हैं। कुछ दिनों के बाद फिर वे अलग-अलग स्त्री के साथ विवाह करने का निश्चय करते हैं। इस खोज में उनकी मुलाकात "आ" और "ई" से होती है, जो क्रमशः राजमाता और राजकन्या हैं। दोनों में यह तया हुआ कि बडे पैर वाली से बड़ा भाई अर्थात क शादी करेगा और छोटे पैर वाली से छोटा भाई अर्थात ख। परिणामतः क बडा होते हुए भी ई अर्थात राजकन्या से और ख छोटा होते हुए भी आ अर्थात राजमाता से विवाह करता है। कालान्तर में आ एक लड़के को और ई दो लड़कों को जन्म देती है। अब बच्चों के मन में यह प्रश्न है कि वे क और ख को क्या कहें ? आ और ई के निम्नलिखित संवाद से पारिवारिक संबंधों में निर्माण हुई संबोधहीनता और अजनबीपन की स्पष्ट झलक दिखाई देती है-

"आ : बच्चों के सवाल थे, क और ख को हम कया कहें ? किस तरह संबोधित करें ?

ई : अजीब है यह दुनिया । सिर्फ संबोधनों की बैसाखियों पर लँगडाती हुई चलती रहती है।

आ : बच्चे परेशान थे।

ई : हमारे बच्चे, हमे ही कोई संबोधन नहीं दे पा रहे थे।"[35]

इसी नाटक में युवती अर्थात नटी, जो क और ख की प्रथम पत्नी है, और जिसे जंगल पार कर कामाख्या देवी के मंदिर में पुजारी के पास अपनी बिपदा का उपाय पूछने जाना है, रास्ते में एक किसान अर्थात नट - जो अपने एक हाथ में गठरी,

दूसरे में डोलची, कन्धे पर मेमने को डाले और रस्सी से भेड को खींचता हुआ जा रहा है - से मिलती है। बात ही बात में वह उसे अपने साथ अनैतिक संबंध स्थापित करने के लिए न केवल उकसाती है बल्कि उसके साथ अनैतिक संबंध स्थापित भी करती है। प्रस्तुत नाटक का पात्र क जो बाद में महामात्य के रूप में चित्रित है, वित्तमंत्री से अपनी पत्नी के अनैतिक संबंधों की बात नटी के सामने स्वीकार करते हुए कहता है - "और तुमसे छिपा ही क्या है, लोग तो कहते हैं कि वित्तमंत्री से मेरी पत्नी के ऐसे-वैसे संबंध हैं....।"[36]

मणि मधुकर के **इकतारे की आँख** नाटक में भक्त-दो-जिसने चौदह ब्याह किए हैं और उतनी ही रखैलें रख छोड़ी हैं और इधर जिसका मन नूरमहल वाली मोती बाई पर आ गया है - महाभैरवी के पास मोहिनी मंत्र पाने के लिए जाता है। उसका बड़ा बेटा उसके रास्ते का रोडा बन गया है, क्योंकि वह भी मोती बाई के पास जाने लगा है। इसीलिए महाभैरवी के पास उसे अपने रास्ते से हटाने की प्रार्थना करते हुए वह कहता है - "उस रोड़े को हटाइए, माता। वह मोती बाई के पास जाने लगा है। उस पर मूठ चलाइए, उसे मटियामेट कर दीजिए...."[37]

बोलो बोधिवृक्ष नाटक का काके जो सेल्समैन है और "जवानी का तेल" बेचता है, इस तेल के खरीदने वाले लोगों के संबंध में नीनी से कहता है - "...वयोवृद्ध नेता, अधेड अफसर और लाइफ पार्टनर की डिप्लोमैसी के मारे हुए राजदूत, मेरा तेल लपक कर खरीदते हैं। उनकी प्रेमिकाएँ-बीवियाँ...मुझे चाव से और ललचाये भाव से देखती है। परिणामस्वरूप...कभी-कभी "जवानी का तेल" बेचते-बेचते मुझे अपनी जवानी भी बेचनी पड़ती है।"[38]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो या निर्धन, उसमें विघटन दृष्टिगोचर होता है।

इ. <u>समाज जीवन और मूल्य विघटन</u> :- मनुष्य सामाजिक प्राणी है और सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे एक-दूसरे से सम्पर्क रखना पड़ता है। लेकिन युग की विसंगत परिस्थितियों ने मनुष्य को इस कदर झकझोर डाला है कि उसका सामाजिक

जीवन तहस-नहस हो गया है। आज समाज में हम देखते हैं कि भ्रष्टाचार का साम्राज्य सर्वत्र फैला हुआ है। यद्यपि कानूनी तौर पर रिश्वत लेना और देना अपराध माना गया है, फिर भी समाज में कोई भी काम बिना रिश्वत के नहीं होता है। इस कारण आज के समाज में रिश्वत लेना और देना कानूनी तौर पर अपराध होते हुए भी सामाजिक स्तर पर एक आम प्रवृत्ति बनती जा रही है। आज भ्रष्टाचार को ही शिष्टाचार माना जा रहा है। समाज-जीवन में यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ गई है कि मनुष्य आज ईश्वर को भी रिश्वत का लालच दिखाने लगा है। **रसगंधर्व** नाटक का लेखक नाटक की सफलता के लिए ईश्वर की प्रार्थना करते हुए कहता है- "हे कृपानिधान, हम रिश्वत देने के पक्ष में नहीं हैं और न ही देवगणों को लोभी मानते हैं। पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि यदि नाटक सफल हुआ तो कुछ न कुछ प्रसाद चढायेंगे ही।"[39]

मणि मधुकर के **बुलबुल सराय** नाटक में तो न्यायदान का पवित्र कार्य करने वाले न्यायाधीश को खुले आम रिश्वत लेते हुए चित्रित किया है। यह न्यायाधीश केवल रिश्वत ही नहीं लेता, बल्कि रिश्वतखोरी का समर्थन भी करता है। उसके शब्दों में "...सोचना मेरा काम नहीं है। मुझे तो न्याय देना है। चूँकि देता हूँ इसलिए लेता हूँ। लेन-देन से समाज चलता है, देश चलता है।"[40]

इसी प्रकार मणि मधुकर के महानगरीय जीवन पर आधारित नये नाटक **बोलो बोधिवृक्ष** में राजनीतिक क्षेत्र की रिश्वतखोरी[41]को खुलकर उभारा गया है।

आज समाज में हम देख रहे हैं कि प्रदर्शन प्रवृत्ति काफी जोरों पर है। समाज में असली नहीं, नकली वस्तुओं की खपत है। परिणामस्वरूप समाज का हर व्यक्ति दिखावटी बन गया है। वह अन्दर से कुछ और है और बाहर से कुछ और। वह चाहता है कि लोग उसे वह समझे जो वास्तव में वह नहीं है। मणि मधुकर के **इकतारे की आँख** नाटक में कबीर के दोहों के माध्यम से मनुष्य की इस प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया गया है।[42] इसी प्रकार उनके नये नाटक **बोलो बोधिवृक्ष** में भी काके, लाले, नीनी और छीछी पात्रों के माध्यम से नाटककार ने मनुष्य की प्रदर्शन-प्रवृत्ति की धज्जियाँ उड़ाई है। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

"काके : हटाओ यह अंधकार।

छीछी : तुरन्त हटाओ। फौरन।

लाले,नीनी : हम रोना चाहते हैं।

काके : हम अंधकार में रोना अपना अपमान समझते हैं।

छीछी : हम ऐसे आँसुओं को व्यर्थ मानते हैं, जिन्हें दर्शक न देख सकें।"[43]

आज समाज में चापलूसी की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। मालिक की हाँ में हाँ मिलाना, उसी झूठी प्रशंसा के पूल बाँधना, दूसरों के संबंध में भला-बुरा कहकर मालिक के कान भरना और उसके द्वारा अपनी पदोन्नती करवा लेना आज एक नया प्रतिमान बन गया है। मणि मधुकर के **रसगंधर्व** नाटक का पात्र है, जो एक मामूली कैदी था, चापलूसी के बल पर अपनी पदोन्नती करवा कर सन्तरी बन जाता है। ब और स के निम्न संवाद से यह बात स्पष्ट हो जाती है -

"ब : मुझे वे दिन अच्छी तरह याद हैं, जब संन्तरी एक मामूली कैदी था। हमारे साथ काम करता था। जमीन पर लेटता था। हाजमा ठीक न रहने के कारण हरामी हर घडी पादता रहता था। हम उसे ठोकते थे। वह हमारे पाँव चाँपता था। लेकिन अचानक उसमें तबदीली आयी। उसने जासूसी करना शुरू कर दिया। छोटी-से -छोटी बात भी वह सुपरिटेंडेंट से जाकर कह देता था। हर किसी की चुगली खाता था। नतीजा यह हुआ कि कुछ समय बाद वह हाकिम बना दिया गया - हमारा हाकिम।

स : · दर्शकों की ओर · यहाँ जितने भी हाकिम है, सब इसी तरह तरक्की पाये हुए हैं।"[44]

मणि मधुकर के **इकतारे की आँख** नाटक का कोतवाल वास्तव में बड़ा ही क्रूर, जुल्मी, अत्याचारी और अनाचारी है। परंतु उसके पालतू कवि पुरस्कार की लालच में उसकी झूठी तारीफ करते हैं।[45]

आज के समाज जीवन पर फिल्मों का भी काफी प्रभाव दिखाई देता है। हमारे सोने, जागने, प्यार जताने, क्रोध प्रकट करने, कपडे पहनने और यहाँ तक कि रोने पर भी फिल्म का प्रभाव देखा जा सकता है। आज फिल्मी दुनिया समाज-जीवन का अभिन्न अंग बन गई है। फिल्मी अभिनेता और अभिनेत्रियों की तस्वीरे आज देवताओं की तरह पूजी जाती हैं। लोग सोने से पहले ईश्वर का नामस्मरण करते हैं, परन्तु **रसगंधर्व** नाटक का "स" सोने से पहले हेमामालिनी को याद करता है।[46] **बुलबुल सराय** नाटक के क और ख जो क्रमशः न्यायाधीश और चोर के रूप में चित्रित है, न्यायालय में ही "चोरी-चोरी मेरी गली आना है बुरा।" "इसलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो।","झुमका गिरा रे" आदि गीतों का प्रयोग[47]करते हैं। न्यायाधीश और चोर के द्वारा न्यायदान के पवित्र स्थान पर फिल्मी गीतों का प्रयोग निश्चित रूप से विसंगत जीवन-बोध को ही सूचित करता है। **इकतारे की आँख** नाटक में भी तथाकथित विद्वान निर्देशक से "पाकीजा" फिल्म की हिराइन मीनाकुमारी को नाटक के "शो" के वक्त बुलवा लेने की बात करते हैं, ताकि वे उसे नजदीक से देख सकें।[48] जब समाज के विद्वानों की यह स्थिति है, तो आम जनता की स्थिति कैसी होगी इसका हम अंदाजा लगा सकते हैं।

मणि मधुकर के **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक के सभी पात्रों पर फिल्मी दुनिया का प्रभाव दिखाई देता है। काके, लाले, नीनी और छीछी को जब ऊलजलूल नाटक लिखने वाले नाटककार की मृत्यु का समाचार मिलता है, तो सब उसकी कडवी कसैली मैली यादों में नाचते रोते हुए गाने लगते हैं -

"**नीनी** : याद आ रही है, तेरी याद आ रही है -

छीछी : तुझ को पुकारे मेरा प्यार, मेरे नाटककार।

काके : याद में तेरी जाग-जाग के हम, रात दिन करवटें बदलतें हैं-

लाले : भूली हुई यादों मुझे इतना न सताओ, अब चैन से रहने दो, मेरे पास न आओ -

नीनी : आSS जा रे परदेशी, मै तो कब से खड़ी इस पार -

काके : बेकरार करके हमें यूँ न जाइये, आपको हमारी कसम लौट आइये-

छीछी : अभी ना जाओ छोडके कि दिल अभी भरा नहीं -

लाले,नीनी : तुम्हें याद होगा, कभी हम मिले थे -

काके,छीछी : याद किया दिल ने कहाँ हो तुम, प्यार से पुकार लो जहाँ हो तुम -

चारों साथ-साथ : (बेसुरे होकर) टूटे हुए ख्वाबों ने अब हमको ये सिखाया है, यो रोना सिखाया है···दिल ने जिसे पाया था - वो एक था नाटककार··आँखों ने गवाया है -

मन तड़पत हरि दरशन को आज
मोरे तुम बिन बिगड़े सगरे काज"[49]

उपर्युक्त ऊलजलूल फिल्मी संगीत स्पष्ट करता है कि आज का मनुष्य अगर रोता भी है, तो फिल्मी गीतों को माध्यम बनाकर ही। अगर वह किसी से मारपीट करता है, तब भी वह बच्चन या अमजद खान को याद करता है।[50] उसकी नजर में फोरन पालीसी का मतलब है - पडोसिन से अच्छे संबंध। तभी तो काके और लाले गा रहे हैं -

"काके : मेरे सामने वाली खिड़की में, एक चाँद सा मुखडा रहता है-

लाले : वो नए पीएम को देख-देख, कुछ उखड़ा-उखड़ा रहता है।[51]

फिल्मों की तरह आज के समाज जीवन पर टीवी और वीडियो का भी काफी प्रभाव है। आज ये दोनों चीज़ें हमारे जीवन का अविभाज्य अंग बन गई हैं। लोग अपना समय किताबें पढ़ने में नही, टीवी और वीडियो देखने में गँवाते हैं। काके और लाले की निम्न बातचीत व्यंग्यात्मक रूप से इसी बात को स्पष्ट करती है -

"काके : मैं पूछता हूँ, तुमने पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" का साहित्य पढ़ा है?

लाले : मैं किताब नहीं पढ़ता टीवी देखता हूँ और वीडियो पर···[52]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि युग की विसंगत परिस्थितियों के कारण सामाजिक जीवन में भी अनेक नये प्रतिमान निर्माण हो रहे

हैं, जो मुख्यतया मूल्य-विघटन को सूचित करते हैं।

ई. राजनीति और मूल्य विघटन :- राजनीतिक क्षेत्र में भी अनेक नये प्रतिमान निर्माण हो गये हैं। कहा जाता है कि "प्रेम और युद्ध में सबकुछ जायज है" और वर्तमान राजनीतिज्ञों की ओर देखने पर इस विधान की सत्यता प्रमाणित होती है। आज के नेता सत्ता प्राप्ति के संघर्ष में इन्सानियत को भूल गये हैं। स्वार्थान्धता और सत्तान्धता ने उनके अन्दर के इन्सान को खा लिया है। गुंडागर्दी और पैसे के बल पर जनता के ये सेवक जनता को ही लूट रहे हैं। नये-नये तरीकें ईजाद कर चुनाव जीतना ही उनका लक्ष्य होता है। चुनाव जीतने के लिए बुरे से बुरे मार्ग का अख्तियार करने में वे जरा भी नहीं हिचकिचाते। सत्ता प्राप्ति के लिए विरोधी दल के नेताओं का अपहरण करना या उन्हें जान से मार देना ये गलत नहीं मानते। सत्ता प्राप्ति का उनका यह मोह बुढ़ापे तक उनका साथ नहीं छोडता। मणि मधुकर के असंगत नाटकों में राजनीति के इस स्वरूप को उघाड़ कर रखा गया है।

रसगंधर्व नाटक में राजकुमारी सत्ता का प्रतीक है, जिसे पाने के लिए सब लालायित हैं। राजकुमारी जिसे पसन्द करेगी, वही नया राजा बनेगा। इसीलिए नाटक का पात्र "स" जो कैदी होने के बावजूद एक दर्जी भी है, उसे पाने की इच्छा रखता है। लेकिन वह यह भी जानता है कि बिना पैसे के यह संभव नहीं है। अपनी व्यथा-प्रकट करते हुए वह कहता है- "मेरे पास कपडे-लत्ते ढंग के नहीं हैं, वरना-सोच तो रहा था मैं भी कि स्वयंवर के कम्पटीशन में उतरूं।"[53] इससे स्पष्ट है कि आज की राजनीति अमीरों के हाथ की कठपुतली बन गयी है। जिसके पास पैसा है, वही चुनाव लड़ भी सकता है और जीत भी सकता है।

आजकल आतंकवाद और राजनीति पर्यायवाची शब्द बनते जा रहे हैं। चुनाव जीतने के लिए अनेक नेतागण आतंकवाद का सहारा लेते हैं। बंदूक की नोक पर बूथ कैप्चर करके मतपेटियों को कब्जें में लेने में वे जरा भी संकोच अनुभव नहीं करते। बस, किसी तरह चुनाव जीतकर सत्ता हथियाना ही उनका उद्देश्य होता है। उन्हें यह कतई मंजूर नहीं कि चुनाव जीते, और सरकस कोई और चलाई।[54]

आज के नेता जिस पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चुने जाते हैं, अंत तक वे उसी पार्टी के नहीं रहते। विदूषक की तरह रंग बदलना ये खूब जानते हैं। सत्ता और पद के मोह में ये पार्टी-हित या पार्टी मूल्यों को भूलकर दूसरी पार्टी में जा मिलते हैं। इसलिए मणि मधुकर ने अपने नाटकों में आज के अनेक नेताओं को टिड्डा[55] या विदूषक[56] कहा है।

सत्ता प्राप्ति के लिए नेताओं का अपहरण करना आज नया मूल्य बन गया है। **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक के काके और लाले के निम्नलिखित संवाद से इस बात की पुष्टि होती है -

"लाले : (एकदम हतप्रभ) गुलजारीसिंह कनातवाला प्रधानमंत्री कैसे बन गया ?
काके : उसे किसने छुडाया ?
लाले : हम उसे अगवा कर लाये थे। वह हमारी कैद में था। छूट कैसे गया?
काके : हम तो उसे मौत के घाट उतारना चाहते थे -
लाले : वह हमारा बंधक था।[57]

गौतम बुद्ध ने एक दिन में ही राजनीति से सन्यास लिया था, लेकिन आज के नेता आजीवन राजनीति से चिपककर रहते हैं। बूढ़े होने के बाद भी उनका सत्ता का मोह छूटता नहीं। **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक का चोंचों अस्सी साल का हो चुका है, फिर भी मरने से पहले पीएम बनने की उसकी इच्छा है।[58] मिली हुई सत्ता में संतुष्ट रहना आज के नेताओं का स्वभावधर्म नहीं है। गोंगों और चोंचों स्पष्ट शब्दों में कहते हैं -

"**गोंगों** : हम SSS सिद्धार्थ नहीं -
चोंचों : कि एक दिन में ही हमारा पेट भर जाये।[59]

आज के नेता कहते कुछ और है और करते कुछ और। **इकतारे की आँख** नाटक के ठाकुर विनायकप्रसाद नारायणसिंह एक ऐसे नेता हैं, जो नाटक के प्रारंभ में गणपति-वन्दना के स्थान पर अपनी वन्दना चाहते हैं। नाटककार ने गायक-मंडली के माध्यम से ऐसे नेताओं की कबीर के ढंग में खिल्ली उड़ाते हुए कहा है -

"रात को कोठे के मुजरे में बैठे टांग पसार के
बाई के संग सोकर देखें सपने जन-उद्धार के"[60]

इससे स्पष्ट है कि नेताओं का दिन और रात का बर्ताव अलग-अलग होता है। उनके खाने और दिखाने के दाँत भी अलग-अलग होते हैं। **रसगंधर्व** नाटक में नाटककार ने "स" के रूप में आधुनिक नेता का सही चित्र खींचा है। प्रस्तुत नाटक का अफसर स की पहचान बताते हुए कहता है - "...मैंने तुम्हें भी पहचान लिया है। तुम बहुमत के दर्जी हो। कभी योजनाओं की सिलाई करते हो, कभी आँकड़े की तुरपाई, कभी विरोधियों की बखिया उधेडते हो तो कभी अपने ही दल के महत्त्वाकांक्षी लोगों की गर्दन पर कैंची चलाते हो....।"[61]

वर्तमान राजनीति में सत्ताधारी पार्टी और विरोधी पार्टी के नेता आपस में एक-दूसरे से मिले हुए होते हैं। शासन किसी भी पार्टी का क्यों न हो, जनता को दोनों भी लूटते रहते हैं। सत्ता को बाँटकर खाना ही आज नयी नीति बन गयी है। **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक को बोधिवृक्ष, जो सत्ताधारी पार्टी के नेता का प्रतीक है, स्पष्ट शब्दों में आज के नेताओं का उपदेश देता है -

"बाँट के खाओ
छाँट के खाओ
फाँट के खाओ
लेकिन कभी किसी को ना डाँट के खाओ"[62]

सत्ता को बाँटकर खाने की वर्तमान नेताओं की यह प्रवृत्ति राजनीतिक जीवन का नया प्रतिमान है।

घ. <u>व्यंग्य-बोध के विविध आयाम</u>

मणि मधुकर के असंगत नाटक मुख्यतया राजनीतिक-सामाजिक जीवन की विभिन्न असंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। व्यंग्य-भाव उनके नाटकों की सर्वप्रमुख विशेषता है। मणि मधुकर ऐसे सजग और सूक्ष्म दृष्टि वाले असंगत

नाटककार हैं, जिनकी नजर से राजनीतिक-सामाजिक जीवन का एक भी दृश्य ओझल नहीं हुआ है। आम आदमी की स्थिति, युवकों की दिशाहीनता, वर्तमान स्थिति, बौद्धिक नपुसकता, साहित्यिक पुरस्कार, अंधःश्रद्धा, मँहगाई, भ्रष्टाचार, अफसर, नाटकाकर, समीक्षक, आधुनिक नेता, छात्र संघ, राष्ट्रसंघ , परिवार नियोजन, आधुनिक शिक्षा, अफसर, कर्मचारी, विद्वान, पति-पत्नी संबंध, विघटित सेक्स, वी·आ·पी·ट्रीटमेंट, आपातकाल, आतंकवाद, जातीयता, वेद-पुराण, दान, प्रेम, अकाल, भाषण-स्वातंत्र्य, कोकशास्त्र, प्रेम, चमत्कार, खेल, गणतंत्र, स्थिर सरकार, टीवी, मंत्रपाठ, वंदना, समाज में एक्टरों की स्थिति, प्रसिद्ध गीत, दंगे-फसाद, भाषा और यहाँ तक कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-जीवन के हर पक्ष पर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है। उनके व्यंग्य में तीखी चोट करने की अद्‌भुत शक्ति है। तथापि उनके व्यंग्य से व्यक्ति घायल नहीं होता, सोचने के लिए विवश होता है। मणि मधुकर के असंगत नाटकों में व्यंग्य बोध के जो विभिन्न आयाम चित्रित हुए हैं, उन्हें निम्न तरीके से हम स्पष्ट कर सकते हैं।

अ· <u>आम आदमी की स्थिति</u> :- मणि मधुकर मूलतः आम आदमी के नाटककार हैं। उनके नाटकों में वे सारी चीजे मौजूद होती है, जो आम आदमी को झकझोर सकती हैं। इस संबंध में महेश आनन्द और देवेन्द्रराज अंकुर से हुई भेटवार्ता में उन्होंने स्पष्ट कहा है - मेरा यह मानना है कि अगर रंगमंच या नाटक को लोक से जुड़े रहना है तो हमें उसे लोक परम्परा से जोड़कर रखना होगा। अन्य विधाओं में मुझे इतनी जरूरत महसूस नहीं होती। किंतु जब मैं नाटक पर काम कर रहा होता हूँ, तो यह तलाश करता हूँ कि वे कौन-सी चीजे हैं, जो लोगों की आसानी से और झटके साथ झकझोर सकती हैं, और उन तक पहुँच सकती हैं।"[63] आज सामान्य आदमी की स्थिति कीड़े-मकौड़े से भी बदतर हुई। तथापि इस स्थिति से उबारने के लिए सामान्य आदमी को कृतसंकल्प होकर मार्ग का तलाश करनी चाहिए। रसगंधर्व नाटक के कैदियों की निम्न बातचीत से इसी बात को संकेतित किया गया है -

"द : (राहत की सांस लेकर) हाँ कूडा हमें शरण देता है।

स : हम कीड़े हैं।

द : नरक के कीड़े

अ॰ : इसमें पछताने या अपने आपको धिक्कारने की कोई बात नहीं। यह जेल है। हम कैदी है। इस कटु सत्य को स्वीकारते हुए हमें अपने औजारों की तलाश करनी चाहिए।"[64]

प्रस्तुत नाटक में लेखक और राजकुमारी की चर्चा तथा "तू दुबला क्यों हो गया, रे भाई रामधनिया" गीत के माध्यम से भी नाटककार ने आम आदमी की स्थिति को व्यंग्यात्मकता से उभारा है।

आज की विसंगत परिस्थितियों ने आम आदमी के जीवन को बिलकुल असहाय, अपाहिज और आधा-अधूरा बना दिया है। दुनिया रूपी बुलबुल सराय का हर पात्र ऐसा ही है। बुलबुल सराय नाटक का निम्न संवाद दृष्टव्य है-

"स : कोई नहीं है पूरा -
क : सब कुछ रहा अधूरा -
स : (ई से) तुम आधी, मैं आधा -
ई : पग पग पर है बाधा ।"[65]

"इकतारे की आँख" नाटक में नाटककार ने कबीर और उसके परिवार तथा रैदास और उसकी बीवी के माध्यम से आम आदमी की स्थिति को व्यंजित करते हुए स्पष्ट किया है कि किस प्रकार उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों पर जुल्म और अत्याचार करते रहते हैं। रैदास की पत्नी ज्यानकी को जोगियों का एक समूह उठाकर ले जाता है।[66] इसी प्रकार कुछ बनिये कबीर के बापू नूरा ताऊ की हत्या करते हैं, और उसकी बस्ती को जला डालते हैं।[67] आज भी हम देखते हैं कि उच्च वर्ग के लोगों द्वारा गरीबों की झोपडियाँ जलाई जाती हैं, उनकी स्त्रियों पर अत्याचार होता रहता है और कभी कभी उनकी हत्या भी की जाती है। इन घटनाओं के माध्यम से नाटककार यह कहना चाहते हैं कि आज भी वही स्थिति है, जो कबीर के जमाने में थी।

बोलो बोधिवृक्ष नाटक के काके और लाले सेल्समैन के रूप में जहाँ भी जाते हैं, उन्हें अपमानित होना पड़ता है। अपनी व्यथा प्रकट करते हुए काके कहता है-

"हम दोनों जहाँ जाते हैं, लोग हमें तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। क्यों ? क्योंकि हम मामूली सेल्समैन हैं। कभी कभी डाँट दुत्कार भी खाते हैं। हमारा धंधा ही ऐसा है।"[68]

आ· <u>अफसर</u> :- अफसर तथा कर्मचारी आम जनता और सरकार के बीच की कड़ी है। लेकिन यह कडी भ्रष्टाचार की दलदल में गले तक डूब चुकी है। छिद्रान्वेषण अफसरों की मूल प्रवृत्ति है। रसगंधर्व नाटक के अ, ब, स और द अफसरों की इस प्रवृत्ति को व्यंग्यात्मकता से उभारते हैं -

"द : यह हवा में बातें करता है।
ब : हवा में आदेश लिखता है।
अ : इसीलिए इसकी हवा कभी निकलती नहीं।
स : निकल जाती है।
अ : कब ?
स : जब गुब्बारे में छेद हो जाता है।
द : इसके रोम रोम में छेद है।
ब : यह छेदों के बल पर ही जिन्दा है।
अ : जब पुराने छेद बंद हो जाते हैं, तो यह नये छेद खोज लेता है।
ब : इसी को कहते हैं - छिद्रान्वेषण।"[69]

हमेशा काम में उलझे होने का नाटक करना तथा दौरे पर दौरे करना अफसरों की दूसरी विशेषता है। निम्न उदाहरण देखिए-

"अफसर : मुझे फुरसत नहीं। मुझे फुरसत नहीं। मुझे फुर्रसत नहीं। (खड़ा हो जाता है।) मुझे जरूरी काम निपटाने हैं।
स : निपट चुके।
अफसर : मुझे दौरे पर जाना है। बायाँ पाँव रूस में, दायाँ अमेरिका में। धड़ हिन्दुस्तान में, सिर····।
द : कब्रिस्तान में।
अ : कमीज कश्मीर में।
ब : पतलून कन्याकुमारी में।"[70]

नेताओं के साथ समझौता करके राजसत्ता का मिलकर उपभोग करना अफसरों की तीसरी विशेषता है। रसगंधर्व नाटक का अफसर अप्सरा के संबंध में "स" के पक्ष में निर्णय देते हुए उससे एक वायदा लेता है कि वह समय-समय पर उस अप्सरा को उसके गुप्त प्रकोष्ट में भेजे।[71] यह अप्सरा और कुछ नहीं, बल्कि राजसत्ता है जिसे अफसर "स" के साथ मिलकर उपभोगना चाहता है।

अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को गालियाँ देकर उनसे काम करवा लेना अफसरों की चौथी विशेषता है। रसगंधर्व नाटक का सन्तरी जो छोटा अफसर ही है, कैदियों के साथ किस ढंग से पेश आता है, दर्शनीय है-

"सन्तरी : (एकदम घुडकी भरे स्वर में) तुम सब कामचोर हो। अव्वल दर्ज़े के आलसी और बदमाश।

(चारों कैदी इस प्रहार से सकपका उठते हैं)

द : मैं काठ की संदूकची बना रहा हूँ।

ब : मैं इमारत के भीतर भारत का निर्माण कर रहा हूँ।

स : मैं काल-भैरव का कफन सी रहा हूँ।

अ : मैं दाँत कुरेद रहा हूँ।

सन्तरी : वही चिरन्तन शास्त्रीय गायन - मैं, मैं, मैं। क्या किया तुम लोगों ने आज तक, ऐश और हरामखोरी के सिवाय ? क्या तुम्हें अपनी इज्जत का जरा भी खयाल नहीं ?"[72]

फाइल की फीतों से छेडछाड करना या फाइल दबाए रखना अफसरों की पाँचवी विशेषता है। इसी कारण अनेक संपर्क में आयी हुई युवा स्त्रियों के साथ वे छेडछाड करते रहते हैं। इकतारे की आँख नाटक में निर्देशक और अभिनेत्री का निम्न संवाद अफसरों की इस प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य कसता है -

"निर्देशक : बुखारीचन्द गुप्ता का क्या किया ?

अभिनेत्री : उन्होंने हमारे नाट्य-दलों को "ग्रांट" देने का वायदा किया है। उनका हाथ तो मेरे कन्धे पर कुछ अठखेलियां भी करता रहा।

निर्देशक : गुप्ताजी आई·ए·एस·आफिसर हैं। फाइल के फीतों से छेडछाड की उन्हें आदत है।

अभिनेत्री : उनकी अंगुलियाँ तीन मिनट तक यहाँ पर हिलती-डुलती रहीं। मैं घडी देख रही थी।

निर्देशक : अगर वे तुम्हारे कन्धे को फाइल समझ लेते तो तीन साल भी वहाँ से हाथ नहीं उठाते। फाइल को दबाए रखने में उन्हें महारत हासिल है।"[73]

मणि मधुकर के **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक में भी अफसरों की इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। छीछी और नीनी का निम्न संवाद दृष्टव्य है -

छीछी : तुम्हारा बाँस बंगाली है क्या ?

नीनी : क्यों ? तुम्हें किसने बतलाया ?

छीछी : बतलाया किसी ने नहीं। तुम्हारी सलवार-कमीज से मच्छी-भात की गंध आ रही है, इसलिए -

नीनी : लेकिन तुम अपने मदरासी एमडी को एक रूमाल खरीद कर जरूर दे दो। वो अपना मुँह और इडली-सांभर तुम्हारी साडी के पल्लू से ही पोंछता रहता है।"[74]

इ· <u>सरकारी कर्मचारी</u> :- अफसरों की तरह आज के सरकारी कर्मचारी भी भ्रष्टाचारी, निकम्मे और निष्क्रिय बन गये हैं। दफ्तर में काम के समय गप्पें हाँकना, अफसर की हाँ में हाँ मिलाना और किसी तरह दिन काटना ही इनका दिनक्रम रहता है। **इकतारे की आँख** नाटक का कोतवाल जो एक सरकारी नौकर है, अपनी दिनचर्या बताते हुए कहता है- "क्या क्या करे हम ? सुबह उठते ही गुसल करें, फिर खाना खाएं, फिर जमुहाई लें, फिर पान खाएं, फिर जमुहाई लें, फिर पान खाएं, फिर जमुहाई लें, फिर गाना सुने, फिर जमुहाई लें, फिर शतरंज खेलें, फिर जमुहाई ले और अब फैसला भी हमीं करें ?"[75]

कोतवाल के इस कथन द्वारा सरकारी नौकरों की कामचोरी पर करारा व्यंग्य किया गया है।

आज के सरकारी कर्मचारी काम तो करते नहीं, पर अपने मालिक से अधिक भत्ता, पदोन्नति और वेतन में बढोत्तरी चाहते हैं। इसके लिए कभी-कभी वे मोर्चा और हड़ताल का भी प्रयोग करते हैं। **रसगंधर्व** नाटक के अ, ब, स और द जब अप्सरा के संबंध में निर्णय लेने के लिए अफसर के पास पहुँचते हैं, तब अफसर उन्हें राज्य-कर्मचारी समझकर उनसे जो वार्तालाप करता है, वह वास्तव में आज के सरकारी कर्मचारियों पर करारा व्यंग्य है -

"अफसर : क्या है ?

स : हमारे भाग्य का निर्णय आपके कर-कमलों में है।

अफसर : हो चुका

द : क्या हो चुका ?

अफसर : भाग्य-निर्णय।

अ : बिना सुनवाई के ही ?

अफसर : हाँ। वेतन में बढ़ोत्तरी नहीं होगी। अधिक भत्ता नहीं मिलेगा। रिक्त स्थान नहीं भरे जायेंगे। पदोन्नति नहीं होगी।

ब : हम राज्य-कर्मचारी नहीं है।"[76]

ई· <u>आधुनिक शिक्षा, बौद्धिक नपुंसकता, उदासीनता और दिशाहीनता</u> : "बुद्धिजीवी व्यक्ति अपने आदर्शों और स्वाभिमान की रक्षा के कारण युग की असंगतियों से समझौता नहीं कर पाता, पर विडम्बना यह है कि विषमताओं से साहस के साथ कर्म के स्तर पर संघर्ष करना भी वह नहीं जानता। यही कारण है कि इस संघर्ष में मानसिक स्तर पर क्षत-विक्षत हो प्रायः नपुंसक आचरण अपनाता चला जाता है।"[77] आज का बुद्धिजीवी युवा वर्ग विसंगत परिस्थितियों के कारण उदासीन और निष्क्रिय बनकर दिशाहीनता की ओर अग्रसर है। इस संबंध में प्रा·जयवंत जाधवजी ने ठीक ही लिखा है कि - "वर्तमान शिक्षा पद्धति केवल शिक्षित बेकारों की संख्या बढ़ाती है, उन्हें आजीविका के साधन नहीं देती। परिणामस्वरूप आजीविका के लिए लालायित आज का बुद्धिजीवी वर्ग सामाजिक-राजनीतिक विसंगत परिवेश में उलझकर गोते खाने के

लिए विवश है।"[78] मणि मधुकर ने अपने नाटकों में व्यंग्य के माध्यम से इन सब बातों को स्पष्ट किया है।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अनेक दोष हैं। मूलतः उसमें बच्चों के मनोविज्ञान का विचार नहीं किया जाता। वास्तव में बच्चे खुले वातावरण में पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं। परंतु आज स्कूल-कॉलेजों में बच्चों को कमरे के अंदर बंद करके पढाया जाता है। उन पर इतने बंधन होते हैं कि चाहकर भी वे उससे मुक्त नहीं हो पाते। इसीकारण **रसगंधर्व** नाटक का "स" जब अफसर से यह कहता है कि हम आपका हुलिया पढ़ने के लिए यहाँ आये है, तो अफसर स्कूल-कॉलेजों की पिंजरापोल बताते हुए स्पष्ट शब्दों में उन्हें कहता है - "पढ़ाई-वढाई यहाँ नहीं होगी। स्कूल में जाओ। कॉलेज में जाओ। पिंजरापोल में जाओ।"[79] इस पिंजरापोल में शिक्षा पाकर बड़े हुए बच्चे यह भी नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं ? उन्हें अपना भविष्य अंधकार-मय लगता है। उनकी समझ में नहीं आता कि वे कहाँ जाएँ और क्या करें ? इसीलिए **रसगंधर्व** नाटक का "अ" कहता है - "सबसे पहले यह फैसला करना होगा कि हम क्या चाहते हैं ? कहाँ जाना चाहते हैं ? दायें या बायें ? रास्ता किस ओर है? भविष्य कैसा हो?"[80]

आज की शिक्षा से मनुष्य को ज्ञान तो मिलता है, परंतु इस ज्ञान का वह व्यवहार में उपयोग नहीं कर सकता। परिणामतः पढ़े लिखे होने के बावजूद आज का व्यक्ति जीवन व्यवहार में नपुंसक आचरण अपनाते नज़र आता है। वह आँखे होते हुए भी अंधा, जीभ होते हुए भी गूंगा और कान होते हुए भी बहरा है। **रसगंधर्व** नाटक के कैदियों का निम्न वार्तालाप इसी ओर संकेत करता है -

"अ : (सपाट स्वर में) हम बंदी है।

ब : हम कारागार की कुसुमित वल्लरियों के सिवा अन्य किसी भी दृश्य को देखने में असमर्थ हैं।

स : हमें दंडनायक की कर्कश, कठोर आज्ञा मात्र सुनाई देती है, राजकवि की कोमल, क्लान्त वाणी नहीं।

द : अपनी आत्मा के अन्तःपुर में हम न अंधे हैं, न गूंगे, न बहरे - सिर्फ नपुंसक है।

चारों : (एक साथ) हे राजकवि। जिस प्रकार कृपण अपनी सम्पत्ति को बार-बार छूकर देखता है, किन्तु उसका उपभोग नहीं कर पाता, उसी प्रकार हम नपुंसक इस सृष्टि रूपी सुंदरी का उपभोग करने में अक्षम हैं - केवल कहीं-कहीं से स्पर्श कर उसे सहलाते रहते हैं।[81]

आज का बुद्धिजीवी व्यक्ति सामाजिक-राजनीतिक हलचलों से बेखबर रहता है। इन बातों में उसकी रूचि नहीं होती। वह केवल अपने और अपने परिवार के बारे में सोचता है। दुनिया रहे या न रहे, उसे कोई चिंता नहीं है। वह निष्क्रिय और उदासीन बन गया है। बुलबुल सराय नाटक के निम्न संवाद में यह उदासीनता देखी जा सकती है -

"नटी : मन था कि यही करेंगे खेला, खूब जमेगा मेला।

नट : लेकिन देख रहा हूँ कि तुम्हें कोई दिलचस्पी ही नहीं।

स : हमारी आँखे पथरा चुकी है।

क : कर्ण-कपाट जंग खा चुके हैं।

स : रसबोध सूख गया और उस पर पपडी जम गई -

क : जीवन की हलचल अनजाने थम गई।

स : हमें नहीं पता, हमारी जड़ो में क्या सो गया है, क्या जाग रहा है-

क : बस सांप अपनी केंचुल त्याग रहा है।

नट : तुम्हारी आत्मा एक रपटन है, काई है -

नटी : तुम्हारे चारों तरफ एक खूबसूरत खाई है -

नट : तुम बेखबर हो, चाहे नदी किसी भी रूख में बहे -

नटी : और दुनिया रहे कि न रहे - "[82]

उ· <u>वर्तमान जीवन संदर्भ</u> :- वर्तमान जीवन में आये दिन घटित होने वाली अनेक घटनाओं पर मणि मधुकर ने अपने असंगत नाटकों में माध्यम से करारा व्यंग्य किया है। बम गिरना, गोली चलना, बीवी से लड़कर कुएँ में कूदना या महँगाई से तंग आकर आत्महत्या करना, पुल टूटना, नदी में बस डूबना, रेलगाडी उलटना, मंत्रिमंडल का पतन होना अथवा हवाई जहाज गिर जाना आदि बातें अब वर्तमान जीवन का अभिन्न अंग बन गई हैं। इस प्रकार की घटनाएँ हमारे रोजमर्रा के जीवन में हम हमेशा देखते, सुनते और पढ़ते रहते हैं। **रसगंधर्व** नाटक में पृष्ठभूमि में धमाका और शोर सुनाकर अ, ब, स और द इन्हीं सब बातों का व्यंग्यात्मकता से प्रस्तुत करते हैं -

"द : (भयभीत) यह आवाज ?

स : बम गिरा है।

ब : गोली चली है।

अ : नहीं कोई कुएँ में कूदा है।

द : लेकिन क्यों ?

स : बीबी से लड़कर।

ब : महँगाई में झड़कर। जैसे सूखा पत्ता झड़ जाता है।

द : आत्महत्या ?

अ· नहीं, पुनर्जन्म का प्रयत्न। इधर मरे, उधर पैदा हो गये।

द : किधर

अ : (दर्शकों की ओर इशारा करते हुए) उधर।

स : चौरासी लाख योनियाँ होती हैं।

ब : जन्म-मरण का क्रम चलता रहता है।

(फिर धमाका। तीव्र कोलाहल)

द : फिर वैसा ही शोर।

स : यह कुछ भिन्न किस्म का है।

ब : शायद पुल टूट गया हो।

अ : नदी में बस डूब गई हो।

स : लगता है, रेलगाडी उलट गयी है।

द : या कुर्सी।

ब : मंत्रिमंडल का पतन।

अ : हो सकता है, हवाई जहाज का पतन हुआ हो।

ब : एक ही बात है।"[83]

मणि मधुकर के **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक में तो जगह-जगह सद्यःस्थिति पर तीखे व्यंग्य किये गये हैं। रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद समस्या, पंजाब, कश्मीर और बिहार की समस्या, गोरखालैंड, झारखंड, सार्क, जाफना, इस्लामाबाद, काठमांडो और ढाका की समस्या, लंका के तमिल चीतों की समस्या, पटना के मुख्यमंत्री की समस्या, भागलपुर के दंगे-फसादों की समस्या, राजस्थान के दिवराला की सती समस्या आदि वर्तमान जीवन की अनेक समस्याओं पर नाटककार ने व्यंग्य किया है। नाटक के आरंभ में वंदना और मंत्रपाठ के बाद जब अंधकार होता है, तब अखबार वाले की आवाज सुनाई पडती है - "दो सौ दस मरे, सिर्फ दो सौ दस मरे। पंजाब में पैंतीस और कश्मीर में तेईस को मौत के घाट उतार दिया गया। भागलपुर में एक सौ बयालीस लाशें मिली। कुल दो सौ दस मरें। कल तक संख्या डबल होने की उम्मीद - चार सौ बीस, चार सौ बीस।"[84] इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान मनुष्य का जीवन कितना अशाश्वत है।

प्रस्तुत नाटक में नकाबपोश-एक और दो जब ऊलजलूल नाटककार को पकड़ने के लिए आते हैं और नीनी, छीछी, काके और लाले से इस संबंध में प्रश्न करते हैं तो उन्हें बताया जाता है -

"नीनी : श्रीलंका जाओ। हो सकता है, वह तमिल चीतों के साथ मजे से डोसा खा रहा हो।

छीछी : पटना जाओ। में बी-वो सीएम की नींद में पलीता लगा रहा हो।

काके : : भागलपुर जाओ। संभव है, वह सड़कों पर लाशें गिनवा रहा हो।

लाले : दिवराला जाओ। शायद वह वहाँ किसी विधवा को सती बनने के लिए उकसा रहा हो।"[85]

इस नाटक के अंतिम हिस्से में भी प्रेस कान्फ्रेंस द्वारा अने वर्तमान समस्याओं को व्यंग्यात्मकता से उभारा गया है -

"छीछी : सर, हरिजनों पर अत्याचार हो रहा है।

बोधिवृक्ष : अगर कहीं कोई ऐसा किस्सा हो, तो समझिए यह क्लास-स्ट्रगल का हिस्सा है।

काके : दंगों में दूकाने जला दी गई हैं -

बोधिवृक्ष : अगर कहीं आगजनी है, पथराव है, किसी ने किसी को चाकू मार दिया है तो पक्का मानिए - वहाँ एक बाल भगवानने जन्म लिया है। हम वहाँ एक मंदिर बनायेंगे -

चोंचों : और इमामबाड़े के सदर से उसका उद्घाटन करायेंगे।"[86]

उपर्युक्त संवाद द्वारा नाटककार ने हरिजन समस्या, वर्ग-संघर्ष, दंगे-फसाद, आगजनी, पथराव, मारकाट तथा रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद समस्या को व्यंग्य के माध्यम से बहुत ही कम शब्दों में चित्रित किया है।

ऊ· <u>नाटककार, निर्देशक, दर्शक और आलोचक</u> :- मणि मधुकर के असंगत नाटकों की यह विशेषता है कि उनके नाटकों में नाटककार, निर्देशक, दर्शक, आलोचक आदि नाटक से संबंधित लोगों पर भी व्यंग्य किया गया है। इतना ही नहीं उन्होंने अपने आप को भी व्यंग्य का विषय बनाया है। **रसगंधर्व** नाटक के कैदियों का निम्न वार्तालाप दृष्टव्य है -

"ब : तुमने कल का "भारत-सन्देश" पढ़ा ?

स : नहीं, कुछ था उसमें ?

ब : हाँ, समाचार था कि अपना मणि मधुकर भी उम्मीदवार है।

स : कौन मणि मधुकर ?

ब : अरे नाटककार, नौटंकिया।

अ : बड़ा चालू आदमी है।

द : चरखा कहीं का।

ब : धीरे बोलो यह नाटक उसी ने लिखा है।

द : तब तो हो गया नाटक।"[87]

मणि मधुकर मूलतः आम आदमी के नाटककार हैं। जयशंकर प्रसाद या मोहन राकेश के नाटक वे इसीलिए पसन्द नहीं करते कि वे आम आदमी से जुड़ नहीं पाते। मणि मधुकर की यह अपनी विशेषता है कि असंगत नाटककार होते हुए भी वे मानव-मूल्यों के पक्षधर हैं। इसीलिए **रसगंधर्व** नाटक के अंत में अपने पात्रों को गंधर्व बनाने के बावजूद वे उनके मुँह से मनुष्य के संकल्पों की विजय की बात करवाते हुए कहते हैं - "हम गंधर्व नहीं हैं। हम मनुष्य हैं और यह मानते हैं कि युद्ध में न देवताओं की विजय होती है, न दानवों की - मनुष्य के संकल्पों की विजय होती है।"[88]

वास्तव में असंगत नाटककार समाज में छिपी कुरीतियों का पर्दाफाश करते हैं। हमारी सामाजिक-राजनीतिक जीवन की विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत कर हमें सचेत करते हैं। तथापि असंगत नाटककार को समाज हेय दृष्टि से देखता है। मणि मधुकर को यह बात कतई पसन्द नहीं है। इसीलिए उन्होंने अपने नये नाटक **बोलो बोधिवृक्ष** में सामाजिकों की इस प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य कसा है। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

"लाले : इंटरवल से पहले का नाटक देख कर कुछ लोग हो गये नाराज।

नीनीः उन्हें लगा कि इस नाटक में तो पड़ रही है सब पर गाज।

छीछीः यह तो बहुत बुरी बात है -

नीनीः कि एक अदना और पिदना सा नाटककार -

छीछीः उड़ाये राजनीति के मूल्यवान सिद्धान्तों का मजाक -

काके : उन पर बिखरे खाक।

नीनी: सब जानते हैं -

लाले : कि प्रधानमंत्री के पद की होती है सबसे ज्यादा थाक -

नीनी: लेकिन नाटककार ने तो नोंच ली -

छीछी: शीर्षस्थ सत्तापुरूष की नाक।

काके : लिखा गया क्यों एक नाटक ऊलजलूल -

लाले : उसे तुरन्त लिया जाना चाहिए -

काके : अमूल-चूल-निर्मूल।"[89]

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में नाटककार के साथ साथ निर्देशक पर भी व्यंग्य किया है। आज के अनेक निर्देशक शराब पीते हैं, अभिनेत्रियों के साथ ऐसे-वैसे संबंध रखते हैं। इकतारे की आँख नाटक का निर्देशक एक ऐसा पात्र है, जो शराब तो पीता है ही, किन्तु साथ साथ नाट्यशास्त्र का उदाहरण देकर नायिका के साथ भी मधुर संबंध रखता है। प्रस्तुत नाटक की अभिनेत्री निर्देशक को इसी बात की याद दिलाते हुए कहती है - "आपको याद है, आपने उस रोज रिहर्सल खत्म होने पर यहीं, पूरी एक बोतल पी थी - मुझे सामने बिठलाकर। और उसके बाद आपने मुझे गोद में लिटाकर प्यार-व्यार के कुछ शेर कहे थे। कबीर का एक पद भी आपने गा डाला था - हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या····"[90]

नाटककार नाटक लिखता है, निर्देशक पात्रों की सहायता से उसे प्रस्तुत करता है, दर्शक उस नाटक को देखते हैं, लेकिन आलोचक या तो उसी भूरि-भूरि भर्त्सना या फिर वज्र कंठ से सराहना करते हैं। आलोचक की इस आलोचना में उसके अपने मत होते हैं। इस कारण कभी-कभी एक ही नाटक की अलग-अलग आलोचना हो सकती है। वास्तव में आलोचना में गुण और दोष दोनों की चर्चा होती है। लेकिन अधिकतर आलोचक अपनी आलोचना में केवल दोषों की ही चर्चा करते हैं। इसीकारण जिस प्रकार हाथी चींटी से, जीभ दाँतों से और स्त्री सफेद वालों से डरती है, उसी प्रकार नाट्यमंडली सीकिया आलोचक से डरती है। आलोचक एक प्रकार का कोचवान

होता है, जो अपने पास कलम का कोडा रखता है। मणि मधुकर ने अपने **बुलबुल सराय** नाटक में ऐसे सीकिया आलोचक पर व्यंग्य के कोडे बरसाये हैं। निम्नलिखित संवाद देखिए -

"नट : अभी मध्यान्तर में मिला था मुझे आलोचक, आलू-चना खाता हुआ-

नटी: क्या कह रहा था?

नट : आलोचक कहता नहीं फरमाता है। (रूककर) यह नाटक उसे पसन्द नहीं आया।

नटी: क्योंकि समझ नहीं पाया।

नट : उसने फरमाया कि नाटक न ऐसा होना चाहिए, न वैसा होना चाहिए- लेकिन कैसा होना चाहिए, इसके बारे में चुप रहा।

नटी: चुप्पी अज्ञान को ढ़क देती है।

नट : कोई भी नाटककार, निर्देशक या अभिनेता किसी पशु चिकित्सक को सलाह नहीं देगा कि तुम जानवरों के पेट पर कैसे छुरी चलाओ, किस गधे को क्या दवा दो -

नटी: हम कभी किसी इंजीनियर, लुहार, व्यापारी और भडभूजे से नहीं कहते कि ऐसा करो या वैसा करो -

नट : लेकिन हमें सब सीख देते हैं।

नटी: जो भी ऐरासिंह, नत्थुराम, खैरालाल आता है रंगशाला में, सीख की पोटली साथ लिए चला आता है और जाते समय उसे यहीं छोड़ जाता है।"[91]

उपर्युक्त दीर्घ संवाद द्वारा नाटककार यह कहना चाहते हैं कि असंगत नाटक समझने में कठिन होते हैं, अतः उसे बिना समझे ही उसकी आलोचना करना ठीक नहीं। प्रबुद्ध दर्शक ही इन नाटकों को समझ सकते हैं। नाटक के अंत में भी गायक-मंडली द्वारा इस ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है -

"हे sss जबरा नाटक देखिके, दर्शक ओंचू-पोंचू
अक्लमंद तो खुस्स हुए,
नाक चढ़ायें घोंचू"[92]

इकतारे की आँख नाटक में भी मणि मधुकर ने आज के नाट्य-समीक्षकों को व्यंग्य विषय बनाते हुए लिखा है- "हमारे देश में नाट्य-समीक्षकों की कोई युनियन तो है नहीं, इसलिए जब वे चिल्लाते हैं तो एक ही मुद्दे पर अलग-अलग चिल्लाते हैं।"[93]

ए· <u>व्यंग्य के अन्य आयाम</u> :- मणि मधुकर ने अपने असंगत नाटकों में व्यंग्य के माध्यम से मानव जीवन की विभिन्न असंगतियों को प्रस्तुत किया है। जीवन को कोई भी पहलू ऐसा नहीं छूटा, जिस पर उन्होंने व्यंग्य न किया हो। व्यंग्य के उपर्युक्त आयामों के अतिरिक्त जनसंख्या और परिवार नियोजन, दान भावना, आतंकवाद, अंधश्रद्धा, महँगाई, भाषा-प्रश्न, छात्र-संघ, राष्ट्र संघ, विघटित सेक्स, दंगे-फसाद, आपात्काल, मीसा, जातीयता, बी·आय·पी·ट्रीटमेंट, खेल, प्रेम, चमत्कार, वेद-पुराण, विद्वान, सरकारी अनुदान, अकाल, स्थिर सरकार, सरकारी समितियाँ समाज में एक्टरों की स्थिति, स्फूर्तिगीत, फिल्मी गीत, मंत्रपाठ, मंगलाचरण, वंदना, प्रार्थना, शान्ति, हस्ताक्षर, स्वीस बैंक, मातमपूर्सी, भाषण-स्वातंत्र्य, पिनाका गीतमाला, कोकशास्त्र आदि व्यंग्य-बोध के अन्य आयामों परद भी नाटककार ने छींटाकशी की है। भारतीय खिलाडी अनेक बार दूसरे देशों में खेलने के लिए जाते हैं, लेकिन अधिकतर हर बार वे हार कर ही लौटते हैं। **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक में इसी बात पर व्यंग्य करने वाला निम्न संवाद देखिए -

"**नीनी** : प्राइम मिन्स्टिर, सर। अब एक प्रश्न स्पोर्टस् पर। हमारे खिलाडी जब अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में जाते हैं तो कोई पदक जीत कर क्यों नहीं लाते हैं ?

बोधिवृक्ष : इस सवाल का संबंध उनकी भावना से है। अगर वे पदक जीत कर लौटेंगे तो उनके हाथ भरे होंगे। तब वे एयर-पोर्ट पर अपने चाहने वालों को हाथ हिला-हिला कर "विश" कैसे कर सकेंगे ?

चोंचों : खाली हाथ वापसी में ही यह सुविधा है कि खूब हाथ हिलाइये, खूब "विश" कीजिए।"[94]

राष्ट्रसंघ में कोई भी फ़ैसला तुरन्त नहीं होता। चर्चाएँ होती रहती हैं और फ़ैसला हो नहीं पाता। अगर होता भी है, तो तब, जब समय बीत चुका होता है और वह फ़ैसला कोई माने नहीं रखता है। **रसगंधर्व** नाटक में अ, ब, स और द पुतली प्राप्ति के लिए संघर्षरत हैं। उनमें यह निर्णय हो पाता कि पुतली किसे मिले ? तब "स" यह प्रस्ताव रखता है कि वे राष्ट्रसंघ में जाकर महासचिव से फ़ैसला देने का आग्रह करें। इस पर "अ" राष्ट्रसंघ पर व्यंग्य करते हुए कहता है- "राष्ट्रसंघ में जब तक फ़ैसला होगा, तब तक यह रूप-शिखा कुम्हला चुकी होगी। इसके दाँत तरबूज के बीजों की तरह निकलकर गिर चुके होंगें। गालों में बन चुके होगें। खाई-खंदक और कमर कमान की तरह टेढ़ी हो चुकी होगी। (पोपले मुँह से) क्या उस वक्त भी तुम लोग इससे विवाह करना चाहोगे ?"[95]

आज वर्तमान राजनीति में स्थिति यह है कि किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल रहा है। परिणामतः संयुक्त सरकार बनानी पड़ती है। मणि मधुकर ने अपने "**बोलो बोधिवृक्ष**" नाटक में इस राजनीतिक स्थिति को व्यंग्यात्मकता से उभारा है। उदाहरण दृष्टव्य है -

"**छीछी** : अगर चाहते हैं स्थिर सरकार
नीनी : तो इधर से उधर होते रहिये बार-बार।
लाले : : इसी तरह हम संयुक्त होंगे -
काके : और शासन के लिए उपयुक्त होंगे।"[96]

मणि मधुकर ने अपने नाटकों में संस्कृत की नाट्य-रूढ़ियों और संस्कृत भाषा पर भी व्यंग्य किया है। संस्कृत नाटकों के संबंध में उनका कथन है - "संस्कृत नाटकों की दुनिया अब वैसी प्रासंगिक नहीं है। वह संसार हमारा नहीं रह गया है। वह बनावटी सा लगता है।"[97] **बोलो बोधिवृक्ष** नाटक में काके के मुँह से संस्कृत पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि - "...अगर मैं कभी विधायक अथवा संसद सदस्य

बन सका, तो संस्कृत में शपथ लूँगा, संस्कृत का सोनहलवा खाऊँगा, संस्कृत का शॉल ओढ़ कर संस्कृत की मर्सिडीज में बैठ कर विचरण करूँगा और संस्कृत में साँस लूँगा। संस्कृत में सुरा-सुन्दरी-संगीत का रसपान करते हुए मैं संस्कृति की रक्षा के लिए अपने प्राण···अपने प्राण····अपने प्राण····अपने पास रखूँगा।"[98]

इस प्रकार मणि मधुकर ने अपने नाटकों में असंगत जीवन के विभिन्न आयामों को व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि -

××× अंग्रेजी ऐब्सर्ड Absurd शब्द के लिए हिन्दी में असंगत या विसंगत शब्द प्रयुक्त होते हैं, लेकिन जहाँ तक नाटक का सवाल है, हिन्दी में" असंगत नाटक" शब्द-प्रयोग अधिक प्रचलित है।

××× असंगत नाटक कथ्य, शिल्प और शैली की दृष्टि से परम्परागत नाटक से भिन्न होता है तथा वह उन सभी रंग-मूल्यों को नकारता है, जिनका परम्परागत नाटक में प्रयोग है।

××× मणि मधुकर के असंगत नाटकों पर लोक-नाट्य-शिल्प तथा पाश्चात्य ऐब्सर्ड नाट्य-शिल्प का विशेष प्रभाव दिखाई देता है।

××× मणि मधुकर ने अपने असंगत नाटकों में आधुनिक युग के विसंगत परिवेश को रूपायित किया है। विशेषकर उनके नाटक राजनीतिक-सामाजिक जीवन की असंगतियों को अंकित करते हैं।

××× आज के नेता, शासक तथा उच्च वर्ग के लोग मनुष्यता छोड़ पशुता की ओर अग्रेसर हो रहे हैं, तथा अपने रक्षक रूप को त्याग भक्षक बनकर जनता का शोषण कर रहे हैं।

xxx आधुनिक जीवन में युग की असंगतियों के कारण व्यक्ति तथा उसके पारिवारिक संबंधों में तो मूल्य-परिवर्तन हुआ ही है, साथ ही साथ सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भी, परंतु यह मूल्य-परिवर्तन कम और मूल्य-विघटन अधिक है।

xxx मणि मधुकर ने अपने नाटकों में मानव जीवन की विभिन्न असंगतियों का पर्दाफाश करने के लिए मुख्यतः व्यंग्य का सहारा लिया है। उनके नाटकों में आधुनिक शिक्षा, बौद्धिक नपुंसकता, उदासीनता, दिशाहीनता, अफसर, कर्मचारी, नाटककार, निर्देशक, आलोचक, खेल, औरतें, राष्ट्रसंघ, स्थिर सरकार तथा वर्तमान जीवन संदर्भ आदि व्यंग्य-बोध के विविध आयामों का चित्रण हुआ है।

xxx मणि मधुकर के असंगत नाटक आधुनिक मानव जीवन की विसंगत स्थितियों का नग्न यथार्थ प्रस्तुत करने वाले सफल नाटक है।

<u>संदर्भ</u>

1· संपा·सत्यप्रकाश एवं बलभद्रप्रसाद मिश्र - मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश, प्र·संस्क· 1971, पृ·7

2. By Groller - The Encyclopedia Americana, Vol.I, First published in 1829, page 57.
- "Absurd is a term used Originally to describe a violation of the rules of logic. It has acquired wide and diverse connotations in modern theology, philosophy, and the arts in which it expresses the failure of traditional values to fulfill man's spiritual and emotional needs.

3· संपा·(प्र.)· रामचंद्र वर्म्मा - मानक हिन्दी कोश (प्रथम खण्ड), प्र·संस्क·1964, पृ·220

4· - वही - (पाँचवा खण्ड) , पृ·99

5· डॉ·गोविन्द चातक - रंगमंच : कला और दृष्टि, प्र·संस्क·1976, पृ·105

6· डॉ·नरनारायण राय - नटरंग विवेक, प्र·संस्क·1981, पृ·84

7· संपा·डॉ·नरनारायण राय - असंगत नाटक और रंगमंच (श्री बैजनाथ राय - असंगत नाट्य : ऐतिहासिक पहचान, लेख), प्र·संस्क· 1981, पृ·43

8· डॉ·जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा, प्र·संस्क·1988, पृ·342-43

9· डॉ·सुरेशचन्द्र शुक्ल "चंद्र" - नाट्यचिंतन : नये संदर्भ, प्र·संस्क·1987, पृ·81-82

10· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष (महेश आनन्द और देवेन्द्रराज अंकुर - नाटककार से रंग-संवाद) प्र·संस्क·1991, पृ·9-10

11· - वही - पृ·7

12· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·15

13· - वही - पृ·31-38

14· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·202-203

15· - वही - पृ·216

16· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·16-17

17· - वही - पृ·48

18· - वही - पृ·60

19· - वही - पृ·27

20· संपा·डॉ·विजयकान्त धर दुबे - हिन्दी नाटक : प्राक्कथन और दिशाएँ (डॉ·नरनारायण राय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : प्रवृत्ति और विश्लेषण, लेख), प्र·संस्क·1985, पृ·69

21· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·59

22· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·197

23· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·38-39

24· - वही - पृ·89

25· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·39

26· - वही - पृ·41

27· डॉ·सुन्दरलाल कथूरिया - समसामयिक हिन्दी नाटक : बहु आयामी व्यक्तित्व, प्र·संस्क·1979, पृ·102

28· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·49

29· डॉ·शेखर शर्मा - समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक, प्र·संस्क·1988,पृ·114

30· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·25

31· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·188

32· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·64

33· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·37

34· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·पृ·27-37

35· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·204

36· - वही - पृ·211

37· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·43

38· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·40

39· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·43

40· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·209

41· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1971, पृ·75

42· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·54

43· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·51

44· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·53

45· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·53-54

46· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·12

47· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·207-208

48· मणि मधुकर - इकतारें की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·79

49· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·199, पृ·52

50· - वही - पृ· 77

51· - वही - पृ·81

52· - वही - पृ·31

53· मणि मधुकर - रसगंधर्व, दि·संस्क·1978, पृ·45

54· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·46

55· मणि मधुकर - रसगंधर्व, दि·संस्क·1978, पृ·63-64

56· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·25-26

57· - वही - पृ·48

58· - वही - पृ·23, 28

59· - वही - पृ·48

60· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·33

61· मणि मधुकर - रसगंधर्व, दि·संस्क·1978, पृ·39

62· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·29, 71

63· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष (महेश आनंद और देवेंद्रराज अंकुर - नाटककार से रंग-संवाद) , प्र·संस्क·1991, पृ·12

64· मणि मधुकर - रसगंधर्व, दि·संस्क·1978, पृ·12

65· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·182

66· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·21

67· - वही - पृ·37-38

68· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·41

69· मणि मधुकर - रसगंधर्व, दि·संस्क·1978, पृ·35

70· - वही - पृ·36

71· - वही - पृ·38-39

72· - वही - पृ·47

73· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·26

74· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·37

75· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·72

76· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·35

77· डॉ·श्रीमती रीताकुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, प्र·संस्क·1980, पृ·135-136

78· प्रा·जयवंत जाधव - मुद्राराक्षस के असंगत नाटक : एक अनुशीलन, अप्रकाशित, पृ·75

79· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·35

80· - वही - पृ·12-13

81· - वही - पृ·17-18

82· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988, पृ·179

83· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·33-34

84· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·21-22

85· - वही - पृ·63-64

86· - वही - पृ·85

87· मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि·संस्क·1978, पृ·45

88· - वही - पृ·78

89· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·53

90· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·30-31

91· मणि मधुकर - (पिछला पहाड़ा) बुलबुल सराय, संस्क·1988,पृ·201-202

92· - वही - पृ·218

93· मणि मधुकर - इकतारे की आँख, प्र·संस्क·1980, पृ·24

94· मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र·संस्क·1991, पृ·85

95. मणि मधुकर - रसगंधर्व, द्वि.संस्क.1978, पृ.33

96. मणि मधुकर - बोलो बोधिवृक्ष, प्र.सं.1991, पृ.44

97. - वही - (महेश आनंद और देवेंद्रराज अंकुर - नाटककार से रंग-संवाद), पृ.13.

98. - वही - पृ.40